आत्म

रचयिता

आत्म विस्मृति

या

रुबाइयाते 'पद्म'

जीवन को सुखमय बनाने का प्रयत्न करते हुये थक जाने
पर 'आत्म-विस्मृति' के सहारे श्रमित रसिक के
हृदय में नवजीवन संचार हो सकता है तथा
अपने आपको भूलकर श्रम की कठोरता
को कम से कम अनुभव करते
हुये वह अपने जीवन को
सुख और सौंदर्य
का केन्द्र बना
सकता
है

पद्मकान्त मालवीय

प्रकाशक
'अभ्युदय' पुस्तक भण्डार
इलाहाबाद

एक रुपया

मुद्रक
महेन्द्रनाथ पाण्डेय
इलाहाबाद लॉ जर्नल प्रेस, इलाहाबाद

निवेदन

'आत्म-विस्मृति' आत्मानुभव है; या, यह कहिये कि अपनी आत्मा का चित्र है। चित्र कैसा है, यह मैं कैसे कहूँ ? इसका निर्णय तो समय ही करेगा। फिर भी मुझे यह कहने में आज तनिक भी संकोच नहीं है कि 'आत्म-विस्मृति' मेरी अपनी चीज़ है। यद्यपि रुबाई के सुकुमार टहनी की क़लम उर्दू या फ़ारसी की वाटिका से लाकर लगाई गई है तथापि अपने हृदय के रक्त से सींच कर मैंने उसे इतना अधिक अपना लिया है कि उस में फलनेवाले फल और फूल सब मेरे ही हैं। वे इतने नए और बदले हुए हैं कि उनको किसी दूसरे के बाग़ के फल-फूल समझना ठीक न होगा। कहने वाले कहेंगे कि 'इनमें उमर ख़ैय्याम की नक़ल की गई है', 'इसमें कुछ भी नहीं है'; किन्तु मुझे इसकी चिन्ता नहीं। मुझे संतोष है कि चीज़ मेरी है; और दूसरों के कहने ही से वह दूसरों की नहीं हो सकती।

छन्द और कुछ शब्द अवश्य ही उर्दू या फ़ारसी साहित्य से लिये गये हैं, वह भी चोरी की दृष्टि से नहीं बल्कि अपने उद्यान में भाँति भाँति के वृक्ष लगा कर उसे अधिक से अधिक सुन्दर और उपयोगी बनाने के लिये। अब जीवन की परिधि विस्तृत होनी चाहिए—और साथ ही साथ उसके प्रकाशन के साधनों में वृद्धि भी।

इन रुबाइयों का वास्तविक आनन्द पाने के लिये आवश्यक है कि हम उर्दू साहित्य के कुछ शब्दों का अर्थ ख़ूब समझ लें। ये शब्द उर्दू साहित्य की निधि हैं, और उर्दू शायरों द्वारा

बारबार प्रयुक्त होने पर भी इनकी नवीनता और अर्थ-गुरुता में कुछ भेद नहीं आने पाया है। उर्दू साहित्य के लिये यह गौरव की बात है कि 'मीर' और 'ग़ालिब' के आशिक़ाना रंग में शराबोर अशआर राजनैतिक रंगमंच से दोहरा कर राजनैतिक वक्ता लोग आज भी सभाओं में एक जान पैदा कर देते हैं। इन्हीं अशआर में नज़र आता है सूफ़ी फ़क़ीरों को ख़ुदा का जलवा और आशिक़ों को प्रेमानन्द।

उर्दू शायरी में 'शराब' या 'मदिरा' 'मय-ख़ाना' या मधुशाले के शब्द अपने सीधे साधे अर्थों के अतिरिक्त कितने ही अन्य अर्थ भी रखते हैं। जो वस्तु, जो घटना, जो दशा, जो विचार हृदय को मस्त और बेख़ुद कर दे; उस सब को शराब कह कर सम्बोधित करते हैं। मैंने शराब की प्रतिद्वन्दिता में विष रख दिया है। विष और हाला दोनों ही में बेख़ुद कर देने की शक्ति है, किन्तु दोनों एक से नहीं। हाला का पान आनन्द-दायक और सुख-प्रद होता है, विष का ठीक इसके विपरीत। इसी लिये 'हाला' और 'विष' का प्रयोग सुख दुख के अर्थों में भी हुआ है। शराब किसी चीज़ में रख कर पी जाती है। जिस चीज़ में रख कर शराब पी जाय उसे 'प्याला' कहते हैं। सुख-दुख का अनुभव शरीर ही के द्वारा हो सकता है; इस लिये कहीं कहीं 'प्याला' या 'पैमाना' शरीर के अर्थ में भी आया है।

"मय-ख़ाना, मय-कदा या मधुशाला संसार को कहते हैं, और माशूक़ की आँखों को भी। सत्संग या साधु-समाज—जहाँ ईश्वरीय ज्ञान और ईश्वरीय प्रेम का प्याला पी पी कर लोग मस्त होते हैं—को भी मय-ख़ाना कहते हैं।" जो शराब के प्याले देकर मतवाला और बेख़ुद कर दे, वह साक़ी है। साक़ी प्रायः माशूक होता है। सुख-दुख रूपी हाला और विष देने वाला

माशूक़ परमात्मा भी हो सकता है, और यह संसार उसका मय-ख़ाना है। एक शब्द और रह गया है, जिसे साफ़ कर देने पर इन पंक्तियों का समझना बड़ा सरल हो जायगा। यह शब्द है पीना। शराब पीने में हाथ पैर हिलाना ही पड़ता है, उसी प्रकार सुख-दुख उठाने के लिये कर्म करना भी आवश्यक है। इसी लिये पीने का अर्थ अनेक स्थलों पर कर्म करने के भी हैं।

वायज़, शेख़जी या पंडितजी शराब न पीने, यानी सुख-दुख उठाने—कर्म न करने—का उपदेश देने के लिये उर्दू साहित्य में बहुत कोसे गये हैं। हमारे पंडितजी भी प्रायः वैराग्य ही का उपदेश देते हैं। इसलिये हमने भी उन्हें कोसा है। इसमें एक रुबाई है:—

जग-मधुशाले में पंडित जी! भूल न आना
पीना होगा यहाँ चलेगा नहीं बहाना
विष हो या हो हाला, चुपके पीना होगा
संभव नहीं कदापि यहाँ आकर बच जाना

इसके अर्थ हुये कि वैराग्य का उपदेश देने वाले पंडितजी महाराज! (यदि आपको वैराग्य ही का उपदेश करना है तो) आप संसार में भूल कर भी न आइये, क्योंकि यह संसार मधुशाला या मय-ख़ाना है। जो यहाँ आते हैं उन्हें पीना अर्थात् कर्म करना ही पड़ता है। यहाँ आकर कोई बहाना नहीं चल सकता। कर्म करने का परिणाम चाहे सुखमय हो अथवा दुख-मय, कर्म तो करना ही पड़ेगा बिना 'चूँ'-चपड़ किये चुप—बिलकुल चुपचाप। इस संसार-रूपी मधुशाले में आकर पीने से बचना, अर्थात् कर्म करने से बचना, कदापि संभव नहीं।

उर्दू साहित्य के ये शब्द इतने सुन्दर और बहु-अर्थी हैं कि "इनमें से प्रत्येक में एक-एक दुनिया छिपी हुई है, और इनके

उच्चारण-मात्र ही से उस दुनिया की झलक आँखों के सामने फिर जाती है।" इन शब्दों को अपना लेने से हिन्दी साहित्य की अभिवृद्धि में सहायता मिलेगी।

हिन्दी के एक विद्वान् का मत है कि पहले तो भाषा में उर्दू शब्द लिये ही न जायँ, और यदि लिये भी जायँ तो उनकी शुद्धि करली जाय। मेरी राय में, यह ठीक नहीं है। शब्द किसी की सम्पत्ति नहीं हुआ करते। एक दूसरे के संसर्ग से जैसे दो जातियाँ कुछ दिनों बाद मेल से रहने लगती हैं; उसी प्रकार भाषाओं में भी मेल हो जाता है और हो जाना चाहिये। इसी में दोनों की भलाई है। मुसलमान कवियों ने कितने ही हिन्दी के शब्द, जो उन्हें सुन्दर लगे, अपना लिये हैं। उदाहरणार्थ—

ऐ बूये गुल समझ के महकियो **पवन** के बीच।
ज़ख़्मी पड़े हैं मुर्ग हज़ारों चमन के बीच ॥१॥
(मीर)

जग में कोई न टुक हँसा होगा।
कि न हँसने में रो दिया होगा ॥२॥
(दर्द)

इन दिनों कुछ अजब है मेरा हाल।
देखता कुछ हूँ **ध्यान** में कुछ है ॥३॥
इस हस्तिये ख़राब से क्या काम था मुझे।
ऐ नश्शये ज़हूर ये तेरी **तरंग** है ॥४॥
काफ़िर न **घमंड** रख ख़ुद आराई का।
सब कुछ हो जो बुत तो ख़ुदाई कैसी ॥५॥
(नसीम)

तोबा जो मैंने की निकल आया ज़रा सा मुँह ।
वह **रंग रूप** ही नहीं सुबहे बहार का ॥६॥

(दाग़)

है इश्क वह शोला कि फुका जाता है **तन मन** ॥७॥

(आसी)

अड़े वक्त तुम दायें बायें न झाँको ।
सदा अपनी गाड़ी को गर आप हाँको ॥८॥

(हाली)

जहाँ में हाली किसी पे अपने सिवा भरोसा न कीजियेगा ।
ये **भेद** अपनी ज़िन्दगी का बस इसकी चर्चा न कीजियेगा ॥९॥

अफ़सानए कैसो कोहकन याद नहीं ।
चाहो तो **कथा** हमसे हमारी सुन लो ॥१०॥

(अकबर)

है टैक्स का वक्त भी इसी तरह **अटल** ॥११॥

इसी सिलसिले में मेरा एक निवेदन और भी है। यह ज़माना भाषा की एकरूपता का है। आज सभी भाषा-वाले इसकी महत्ता को स्वीकार कर चुके हैं। ब्रजभाषा के विरुद्ध जेहाद प्रारंभ होने पर खड़ी बोली के समर्थकों ने यही दलील पेश की थी कि गद्य, पद्य तथा लिखने और बोलने की भाषा एक होनी चाहिये। आज मुझे खेद है कि खड़ी बोली वाले स्वयं उसी मार्ग पर जा रहे हैं जिस पर चलने से कुछ दिनों पहले वे दूसरों को मना करते थे। आजकल के कतिपय

छायावादी कवियों की कविता बिना शब्दकोष की सहायता के कितने भाई समझ सकते हैं ? कवि-सम्मेलन में बैठकर कोरी वाह-वाह करने वालों या विद्वानों की बात मैं नहीं कहता। मेरे नवयुवक भाई मुझसे नाराज़ न हों; आज मैं यह कहने के लिये विवश हूँ कि भाषा की एकरूपता के मार्ग में छायावादी कवियों की भाषा रोड़े अटकाती है।

भाव आपके जो चाहे हों, आपकी उपमायें कितनी ही अमूर्त क्यों न हों, उनमें जितनी चाहे नवीनता लाई जाय किन्तु भाषा तो सब की एक ही हो तभी सौन्दर्य है। कहने वाले कहेंगे कि हिन्दी का कोई रूप अभी निश्चित नहीं हुआ है, छायावाद के आशावादी लेखक अभी निर्माण में लगे हुये हैं, क्यों न लोग उनकी भाषा ही को आदर्श परिमाण या मापक मान लें ? यह दलील कुछ अंशों में ठीक है। किन्तु मेरा निवेदन इतना ही है कि भविष्य निर्माण में भी हमें वर्तमान पर दृष्टि रखनी ही चाहिये। एक ऐसी भाषा तैयार कर देने से जो सर्व-साधारण से बिलकुल ही दूर है, यह कहीं अच्छा है कि सर्व-साधारण की भाषा ही में कुछ परिवर्तन कर उन्नति कर दी जाय। छायावादी कवियों की भाषा सर्वसाधारण की भाषा के समीप ही नहीं, प्रत्युत बिलकुल दूर है और मुझे सन्देह है कि जनता उसे कभी भी अपना सकेगी। जिन हिन्दी के ठेठ शब्दों की मदद से सूर या तुलसी ग़ज़ब का जादू ढाने में सफल हुए, उनको ठुकरा कर संस्कृत कोषों से क्लिष्ट, कर्ण-कटु और अप्रचलित शब्दों को निकाल कर कविता करने वाले 'कविता' नहीं, किन्तु कविता की हत्या करते हैं। अध्ययन करने वालों के लिये संस्कृत काव्य की तरह उसे लोग भले ही पढ़ें किन्तु वह प्रचलित भाषा न हुई है और न हो सकती है।

अवश्य ही ग्रामीण और अपरिमार्जित तथा काव्य की भाषा में भेद है; किन्तु इसके अर्थ यह भी नहीं हैं कि हमारी भाषा ऐसी हो जो साधारण जन-समाज की भाषा से इतनी दूर हो जाय, कि उसके समझने के लिये हमें क्षण क्षण पर कोष देखने की आवश्यकता पड़े। भाषा बा-मुहाविरा और, इसीलिए, सुन्दर तथा सरल होनी चाहिये। भावों को ठीक ठीक अदा कर देना ही भाषा का मुख्य कार्य है।

सर डब्ल्यू एलेक्ज़ैन्डर ने अपनी ANACRISIS नामक पुस्तक में कविता की भाषा के संबन्ध में अपने विचार प्रकट करते हुये लिखा है:—

"Language is but the apparel of poesy which may give beauty but not strength: and when I censure any poet I first dissolve the general contexture of his work in several pieces; to see what sinews it hath, and to mark what will remain behind, when the external gorgeousness consisting in the choice of placing of words, as if it would bribe the ear to corrupt the judgment, is first removed, or at least only marshalled in its own degree."

मुझे आशा है कि नवयुवक भाई मेरे उपर्युक्त निवेदन पर ध्यान देंगे। बहस के लिये तो पक्ष और विपक्ष में घंटों बहस हो सकती है, और कोई पक्ष किसी को मना भी नहीं सकता। मैंने उपर्युक्त बातें बहस के लिये नहीं लिखी हैं। प्रार्थना है कि इस वक्तव्य पर विद्वान् सज्जन शान्त चित्त से निष्पक्ष होकर सोचें और तब अपनी राय दें।

अन्त में, अपनी धृष्टता के लिये हिन्दी के आचार्यों से क्षमा

माँगते हुये मेरा कहना इतना ही है कि मैंने जो कुछ किया उसके लिये मुझे लज्जा नहीं है। मैं अब भी समझता हूँ कि जिस रास्ते पर मैं जा रहा हूँ, वही ठीक और कल्याणप्रद है। एक ही महाप्रदेश की भाषाएं होने के कारण, हिन्दी उर्दू का मिलाप अधिक सुलभ और श्रेयस्कर है। हिन्दी के विद्वानों की निगाह में क़सूरवार होते हुये भी मुझे संतोष है कि :—

"न जहान में तो अमाँ मिली, जो अमाँ मिली तो कहाँ मिली ?
मेरे जुर्म, हाय सियाह को तेरे अफ़्व-ए-बन्दानवाज़ में।"

(इक़बाल)

भाद्रपद सुदी तीज
१९९०

प्रेमोपहार

के

कर कमलों

में सप्रेम

समर्पित

है

तिथि] -------------------

बाबू के चरणों में, जिन्होंने अपने

को मिटाकर मुझे बनाया

है, यह अंजलि सादर

समर्पित

है

अपने को जब छिपा आप में,

खो जाता हूँ ।

पाँच तत्व को एक तत्व में,

तब पाता हूँ ॥

सप्ताकाशों की तारकमाला,

से सज्जित ,

प्रियतम को भुज में भर-भर कर,

मुसकाता हूँ ॥

क्या हूँ, किसने भेजा,

जग में कैसे आया ?

की कोशिश हज़ार, पर

कुछ भी जान न पाया ॥

जब हो मस्त, छोड़ चिन्ता

भूला निज को भी,

तब अपनापन जाकर

हाल सभी कुछ लाया ॥

खिले हुये हैं रंग विरंगे
शुचि प्रसून-दल ।
डाल डाल पर कुहुक
रही हैं बैठी कोयल ॥
अब तो घूंघट दूर करो
मुख से तुम अपने ,
रहना है इस स्थल पर
सब को केवल कुछ पल ॥

रवि ने स्वर्ण-रश्मि-सम्मार्जनि

से बुहार कर।

नभ-प्रांगण में,

मुरझाये, बेले से सुन्दर ॥

फैले तारात्रों को झिटका,

माफ़ कर दिया,

अनुपयोगिता दहल उठी,

निज दुखद भाग्य पर ॥

मारा मारा फिरा
न पाया मैंने उनको।
संध्या समझा मैंने
पागलपन में दिन को॥
जब थक कर बैठा
तो देखा पास खड़े थे,
चूर चूर हो चुका
खोजने में मैं जिनको॥

दुख-शशि को देखा
प्रकाश करते लाखों में।
अश्रु सिन्धु लहराया
निज अलसित आँखों में॥
रोया जब मैं, कानों में
यह कहा किसी ने,
खट्टापन भी रहता है
मीठी दाखों में॥

खिलता है क्यों सदा
कीच में कमल मनोहर ?
उषा-अरुणिमा कहाँ,
कहाँ यह जलता दिनकर ?
रक्त सने हाथों में
मेंहदी का क्या होगा ?
दिन है, करो तयारी
संध्या होगी सत्वर ॥

छोटे छोटे नक्षत्रों ने,

साँध्यगगन पर ।

युद्ध रचा, स्वास्तित्व हेतु,

अति वृहत घोरतर ॥

रक्त-नयन-रवि देख,

प्रथम तो सहमे तारे,

पर विजयी वे हुये,

अन्त में मिलकर लड़कर ॥

प्रथम बनाया दुनिया ने
मुझको दीवाना ।
फिर कुछ सोच समझ कर
चाहा मुझे मनाना ॥
यह दुनिया है उस पागल
सम जिसे झिटक कर,
ठुकराना ही है उसको
निज पास बुलाना ॥

हँसता है जो आज
वही फिर कल रोता है।
वही काटता है नर जो
कुछ वह बोता है॥
फिर भी दीवानी है
दुनिया सुख के पीछे,
बार बार जग कर भी
जग रहता सोता है॥

दुनिया का यह धर्म
नहीं भाता है मुझको।
नहीं तनिक भी तो बनना
आता है मुझको ॥
कानों में ये शब्द
सदा गूँजा करते हैं,
'निज को मुझमें खोकर,
नर पाता है मुझको ॥'

नया घाव छाती पर मैंने
नित्य सहा है।
दीन वचन पर कभी
किसी से नहीं कहा है ॥
क्या विस्मय, यदि अब हालत
हो उस मनुष्य सी,
जो निद्रा में गिर गिर कर
भी जाग रहा है ॥

काँटे चुभने पर तन में
पहले मैं रोया ।
बार बार चुभने पर निज में
निजको खोया ॥
कंटक मुझको माता
की थपकियाँ हो गये,
चुप हो, इनसे लिपट,
मगन हो, अब हूँ सोया ॥

प्रेयसि निशि को पाकर शशि

है खिल खिल पड़ता।

नक्षत्रों से सजा उसे निज

भुज में भरता॥

होते दोनों विलग

समय पर, जब रवि आते।

शशि के ओस-अश्रु का भी

है पता न चलता॥

हृदय हीन दुनिया की घातें
समझ समझ कर।
हृदय और आँखें आती हैं
मेरी भर भर ॥
रोने के अतिरिक्त न कर
सकता कुछ इससे।
जी में आता है अब चलदें
जग से सत्वर ॥

ढेता जा साक़ी मुझको
हाला पर हाला ।
जिसमें ख़ूब लबालब
भर जाये यह प्याला ॥
और गिरे तो रोप
पात्र में लेना अपने ,
जिसमें चलती रहे सदा ही
यह मधुशाला ॥

भरी हुई है प्रिये
तुम्हारे दृग में हाला।
कुल शरीर हो रहा तुम्हारा
है मधुशाला ॥
घेरे हैं उमंग के बादल
सभी ओर से,
रोम रोम हो रहा हमारा
है अब प्याला ॥

छलक रही है साकी की
आँखों में हाला ।
देख देख कर बना उसे
मैं पीने वाला ॥
पीते पीते मुझे ध्यान
ही रहा नहीं कुछ,
मैं मधुशाले में हूँ
या मुझ में मधुशाला ॥

थको न ढाले जाओ बस
प्याले पर प्याला ।
कल की चिन्ता करो न,
देगा देने वाला ॥
सब को चलना है, रहना है
सिर्फ़ यहाँ पर,
साक़ी और हलाहल,
हाला, यह मधुशाला ॥

मेरी अपनी छोटी सी है
उर - मधुशाला ।
जिस में मैं साक़ी हूँ
मैं ही पीने वाला ॥
पंडित जी ! मेरा पंडित-मन
तो कहता है,
चिन्ता तज, पीते जाओ
प्याले पर प्याला ॥

जलती है मेरे उर में
वह भीषण ज्वाला।
कभी चूमता, कभी फेंक
देता हूँ प्याला॥
कभी ठिठिक कर खड़ा,
कभी बढ़ कर मैं आगे।
गिर गिर पड़ता, देख
देख तम-मय मधुशाला॥

जग-मधुशाले में
पंडित जी ! भूल न आना ।
पीना होगा यहाँ ,
चलेगा नहीं बहाना ॥
विष हो या हो हाला
चुपके पीना होगा ,
संभव नहीं कदापि
यहाँ आकर बच जाना ॥

देखो, मेरी मधुशाला
है कितनी सुन्दर ?
पीने वालों का मेला
है लगा निरन्तर ॥
इच्छा हो या नहीं
यहाँ का नियम यही है ,
आकर पीना पड़ता ही है
इसके अन्दर ॥

यहाँ लगा रहता है
हरदम आना जाना।
किन्तु भीड़ है वही,
वही है रोना गाना॥
कुछ तो हँस हँस कर,
पीते हैं कुछ रो रो कर,
कुछ करते पर उनका
चलता नहीं बहाना॥

ऐसी विस्तृत, सज्जित
शाला नहीं कहीं है।
हो न यहाँ पर ऐसी
कोई वस्तु नहीं है॥
देख, आँख में मस्ती
छा जाती है इसको,
हँस कर पीने वालों का
तो स्वर्ग यहीं है॥

क्यों बदमस्त न हूँ ?
पीकर साक़ी की हाला।
जब उसका लोचन ही है
मेरा प्रिय प्याला ॥
प्याले में अपनी छाया को
देख 'पद्म' मैं,
भूल गया मैं क्या हूँ,
क्या है यह मधुशाला ॥

साक़ी बस चुप चाप
यहाँ बैठा रहता है।
एक शब्द भी नहीं
किसी से कुछ कहता है॥
आते हैं, पीते हैं,
कुछ रुकते, कुछ जाते,
वह पीने वालों की
कुल बातें सहता है॥

मुक्त हस्त हो साक़ी ने दी
सब को हाला।
बिना मूल्य पा बना
सकल जग पीनेवाला॥
नहीं किसी को होश,
चलेगी मधुशाला क्या ?
तोड़ रहे हैं आपस में
लड़ भिड़ सब प्याला॥

पीने वालों के हित
बनवाई मधुशाला।
पर निर्माता बना
स्वयं ही पीने वाला ॥
यह मधुशाला है या
जादूगर का घर है,
हाला लगती गरल
गरल लगता है हाला ॥

तुम हो साक़ी, तो मैं
भी हूँ पीनेवाला।
मेरे बिना न चल सकती
है यह मधुशाला॥
मुझसे बढ़कर और भले
हो कैसे तुम जब,
तुमको मैंने दी, तुमने
दी मुझको हाला॥

कभी नहीं पी हो ऐसा
भी है कोई नर ?
किन्तु यहाँ मिलते हैं
पंडित प्रवर अधिकतर ॥
देखें किसको विष,
किसको मिलती है हाला ,
लुक छिप पीते एक,
एक पीते हैं खुल कर ॥

पीने वाले यहाँ
हुये हैं ऐसे ऐसे।
स्वर्ग, नर्क में नहीं
मिलेंगे ढूँढ़ जैसे ॥
साधारण पीने वालों
का हाल यहाँ है,
भूल गये आये थे
कब, जायेंगे कैसे ?

हाला नहीं अगर तो
दे दो मुझे हलाहल।
झूमूँ, मुख पर नाम
तुम्हारा ही हो प्रतिपल ॥
मुझे तुम्हारी मधुर तान
दे सदा सुनाई,
मचा रहे जग में चाहे
जितना कोलाहल ॥

पीना है, पी लूँगा,

विष हो या हो हाला ।

जब तक खाली हो

न जाय यह मेरा प्याला ॥

मैं पीता जाऊँगा, नभ में

नित लुक छिप कर ,

सुलझायेंगी गूढ़ पहेली

तारक - माला ॥

कभी कभी भूले से
पी लेता था प्याला ।
नहीं कहा था मुझे
किसी ने पीने वाला ॥
किन्तु जिधर जाता हूँ
अब उठती है उँगली,
मुझको तो ले बीती
तेरी यह मधुशाला ॥

मुझको महँगा पड़ा
बहुत मधुशाले जाना ।
ढेले खाये,
कहलाया सब में दीवाना ।।
किन्तु नहीं है सोच
'पद्म' इसका मुझको अब ,
मैं मैखाने में हूँ,
मुझमें है मैखाना ।।

देता जा प्याले पर प्याला
साक़ी मेरे ।
है सौगन्ध तुझे मधुशाले
की ही तेरे ॥
मुझे पिला दे इतनी
जिसमें होश न आये,
रहें कृपा के बादल
तेरे मुझको घेरे ॥

झूम झूम कर संध्या
से रजनी मिलती है।
पाकर शशि को शान्त
कुमुदनी खुल खिलती है ॥
अपना अपना भाग्य,
'पद्म' क्या कहें और हम,
दीप शिखा परवाने से
मिलकर जलती है ॥

कलिका ने विकसित चम्पक से

कहा बिहँस कर ।

'खिले हुये तुम लगते हो

प्रिय ! कितने सुन्दर' ॥

चम्पक नत मस्तक हो बोला

धीमे से यह ,

'तुमको खिलना है हमको

मुर्झाना सत्वर' ॥

अब उनकी स्मृति में है मेरा
हाल हुआ यह ।
उनमें मुझमें भेद तनिक भी
नहीं गया रह ॥
उनके वे प्रेमी जो मुझको
मार डालते ,
चूम रहे हैं मुझे मगन हो
'प्रियतम' कह कह ॥

स्वर्ण-किरण-कर मन-दिनकर का
जब हिलता है।
ओस-बिन्दु धुल जीवन-प्याले में
मिलता है॥
झिल मिल कर दुख-तारे
डर से मर जाते हैं,
कोमल जग-तन का कोना कोना
खिलता है॥

विष से परिपूरित
प्याला है जीवन अपना ।
पीकर, खुली आँख
देखा करता हूँ सपना ॥
चौंक चौंक कर
सुनता हूँ ये शब्द किसी के ,
'दुख मय जग में सुख है
केवल सब कुछ तजना' ॥

रो लेने दो मुझे, न छेड़ो ,
तुम सब जी भर ।
आँसू से अपने कपड़े
कर लेने दो तर ॥
हँसने वाले रोने वालों को
क्या समझें ?
अभी नहीं सीखा है जग ने
जीना मर कर

फूले जग में रंग बिरंगे
ख़ूब फूल हैं।
पर न जानते वे वर्षा के
नदी - कूल हैं॥
इतराते हैं मिला धूल में
नित मधुकर को।
धूल समझ कर, यद्यपि
वे स्वयमेव धूल हैं॥

मैं उनके प्रकाश मय मुख का
हूँ परवाना ।
जलता देख मुझे जग कहता
है दीवाना ॥
किन्तु जले, ढूंढे रज-कण
लेने को मेरे,
देव लोक से देवों को भी
होगा आना ॥

इच्छा है यह नहीं
बनूँ मैं पंडित ज्ञानी।
और बने मेरे पीछे
दुनिया दीवानी ॥
जग-आँखों की ओट,
चाहता हूँ दिन गिनना,
खाने को हो चना,
और पीने को पानी ॥

कितने आये, गये
रुकी यह वायु नहीं पर ।
गगन, भूमि भी वही,
वही झरता है निर्झर ॥
अग्नि आज भी जलती है
फिर इनसे निर्मित,
तन न हो सका अमर
बता दो प्रियतम क्यों कर ?

रखना मेरे इस शरीर को
ऐसे स्थल पर।
जहाँ भंग कर सके
शांति कोई मत रो कर॥
मेरे सरहाने हो केवल
वृक्ष एक ही,
मुझको चूमें गिर कर
जिसके पुष्प निरन्तर॥